वैदिक साहित्य में युद्ध नीति

वैदिक साहित्य ज्ञान और विज्ञान का अपार सागर है, जिसमें समस्त विद्यायें सूत्रात्मक शैली में व्याप्त हैं। जिन्हें समझने के लिए मनन एवं चिन्तन अपेक्षित है, अत: कहा गया है- "मन्त्रामननात्" अर्थात् ऋचाओं को समझने के लिए पर्याप्त मनन अपेक्षित है। जो अर्थ समझकर भी, तदनुसार आचारण नही करता, उसका ज्ञान व्यर्थ है-

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमनि यस्मिन् देवा अधिविश्वेनिषेदुः।
यस्तन्न वेद किम् ऋचा करिष्यति यइत्त्दविदुत इमे समासते ।।"

(ऋग्वेद)

वैदिक ज्ञान के प्रसार से ही समस्त दु:खों का अन्त हो सकता है। मानवीय जीवन दुर्लभ है, उसमें भी विप्रता और विप्रता में भी सनातन वैदिकधर्म का अनुगमन करने वाले परिवार में जन्म लेकर, वेदज्ञ बनना, पूर्व पुण्य कर्मोंका सुपरिणाम होता है। इसी भाव को लक्ष्य कर शंकराचार्य ने विवेक-चूड़ामणि में लिखा है-

"जन्तूनां नर जन्म दुर्लभ मतापुस्त्वंतातो विप्रता ।
तस्माद् वैदिक धर्म मार्ग परता विद्वत्तमस्तमात् परम् ।।
आत्मानात्मविवेकिनो स्वनुभवो ब्रह्ममात्मना संस्थिति ।
मुंक्तिनोशतकोटि जन्म सुकृतैर्युरामेर्विना लभ्यते ।।"

(विवेक चुड़ामणि : शंकराचार्य)

मनावीय जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम वेदज्ञान के आलोक से अज्ञान के अन्धकार को भगायें। वैदिक ऋचाओं की मानवता के लिए शाश्वत् प्रेरणा है -

"आ नो भद्राकृतवो यान्तु विश्वत: " अर्थात-सब ओर से हमें सद्विचार प्राप्त हों। "उद्यानं ते पुरूष नावयानम्" हे पुरुष तेरी ऊर्ध्वगति हो अधोगति कभी न हो।

प्रत्येक जीवन एक युद्धक्षेत्र है, जीवन पथ में आने वाली विघ्न बाधायें ही शत्रुदल का आक्रमण हैं। जो इन विघ्नबाधाओं में भी अप्रतिम साहस के साथ बढ़ता रहता है वही अपराजेय सेनानी कहलाता है। वैदिक साहित्य में सर्वत्र युद्ध में विजयी होने का आवाहन किया गया है-

"तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वितिष्ठध्वम् ।।

(अथर्व वेद - ११/९/२६)

वैदिक साहित्य में स्थान स्थान पर जय प्राप्त करने का आदेश है। पुरोहित यजमान क्षत्रियों से कहता है "प्रेता जयता नर उग्राव: सन्तु बाहव: (अथर्ववेद ३/१९/६)

अर्थात, हे अग्रगामी वीरों। चढ़ाई करो और विजय प्राप्त करो, तुम्हारी भुजायें सशक्त हों। अथर्ववेद की प्रस्तुत ऋचा में विजयी होने का उपदेश है। विजय से पूर्व की तैयारी का भी संकेत है।

(१) उत्तिष्ठत - उठो ! पड़े मत रहो। उठने के भाव को अथर्ववेद (१०/९/३) में स्पष्ट किया गया है।

"उत्तिष्ठत मारमेथा मादान सं दानाभ्याम् ।
अभित्राणां सेना अभिधत्तमर्बुदे । " अर्थात, तुम दोनों (सेनापति तथा सेना)

उठो! और धरपकड़ आरम्भ करो। शत्रु की सेना बाँध डालो। युद्ध में ढीली ढाली नीति से सफलता नहीं मिला करती।

(२) "संनह्यध्वम्" तैयारी करो। शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो जाओ। अर्थवेद" (११/१०/१) में कहा गया है "संनह्यध्व मुदारा: केतुभि: सह "अर्थात, उदार होकर अपने झंडों के साथ तैयार हो जाओ। झंडा ले चलने का भाव है युद्ध के लिए सज्जित होना। तुम्हारा युद्धोत्साह देखकर शत्रु "सं विजन्ताम्" (अथर्ववेद ११/९/१२) घबरा उठे। तू शत्रूओं को भयभीत कर दे।

(३) मित्र: तुम परस्पर प्रीतियुक्त होकर तैयारी करो। जिस सेना में फूट होगी, पारस्परिक स्नेह न होगा, उसकी पराजय सुनिश्चित है, अत: विजया भिलाषियो में पारस्पारिक प्रीति का होना अपेक्षित है तभी शत्रुदल पराजित हो सकेगा।

(४) देवा : देव के अनेकार्थों में से एक अर्थ है, विजयाभिलाषी होना। चढ़ाई वालों को देव बनकर जाना चाहिये। विजय के भावों से हृदय भरपूर होना चाहिये - "सर्वा इतरजना रक्षां स्यमित्राननु धावत्" (अथर्व ११/१०/१) अर्थात - ये शत्रु सर्प हैं, इतर जन हैं। इन बैरी राक्षसों के पीछे दौड़ो और इन्हें पवित्र करो, अर्थात- युद्ध को धर्मयुद्ध बनाओ। संग्राम जीतने का यह परिणाम हो कि " अभित्राणां शचीपतिभिर्भीषां मोचि कश्चन" (अथर्व वेद ११/९/२०) सेनापति उन शत्रुओं में से किसी को न छोड़े। शत्रुओं पर विजयी बनकर यथास्थान स्थित हो जाओ।

वैदिक ऋचाओं की प्रेरणा को आत्मसात करना, मानवमात्र का कर्तव्य होना चाहिये। महर्षि पाणिनि के अनुसार एक शब्द का पूर्णज्ञान ही स्वर्गप्राप्ति में साधक है -

"एक शब्द: सम्यक् ज्ञात: सप्रमक्त: स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति।" अत: वैदिक ऋचा की किसी भी प्रेरणा को समझकर मानवीय जीवन को सार्थक बना सकते हैं तथा जीवन के प्रत्येक संग्राम में विजयी हो सकते हैं विदज्ञ विर्मश होकर धर्मपथ पर चलते हैं तथा निर्भयकर्मों का आवाहन करते हैं -

"धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं,
चेतकर चलना, कुमारग में कदम धरना नही,
भद्रभावों में भयानक भावना भरना नही,
बुद्धिवर्धक लेखलिखने में कमी करना नही ।"

बुद्धि को वैभवमय बनाने हेतु वैदिक ऋचाओं का अर्थज्ञान तथा क्रियात्मक जीवन आवश्यक है।

डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी,
श्यामगंज, बरेली.